0751CH19

# 19 द्वेष करनेवाले का जी नहीं भरता

पांडवों के वनवास के दिनों में कई ब्राह्मण उनके आश्रम गए थे। वहाँ से लौटकर वे हस्तिनापुर पहुँचे और धृतराष्ट्र को पांडवों के हाल-चाल सुनाए। धृतराष्ट्र ने जब यह सुना कि पांडव वन में बड़ी तकलीफ़ें उठा रहे हैं, तो उनके मन में चिंता होने लगी। लेकिन दुर्योधन और शकुनि कुछ और ही सोचते थे।

कर्ण और शकुनि दुर्योधन की चापलूसी किया करते थे, किंतु दुर्योधन को भला इतने से संतोष कहाँ होता! वह कर्ण से कहता—"कर्ण, मैं तो चाहता हूँ कि पांडवों को मुसीबतों में पड़े हुए अपनी आँखों से देखूँ। इसलिए तुम और मामा शकुनि कुछ ऐसा उपाय करो कि वन में जाकर पांडवों को देखने की पिता जी से अनुमति मिल जाए।"

कर्ण बोला—"द्वैतवन में कुछ बस्तियाँ हैं, जो हमारे अधीन हैं। हर साल उन बस्तियों में जाकर चौपायों की गणना करना राजकुमारों का ही काम होता है। बहुत समय से यह प्रथा चली आ रही है। इसलिए उस बहाने हम पिता जी की अनुमति आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।"

कर्ण अपनी बात पूरी तरह से कह भी न पाया था कि दुर्योधन और शकुनि मारे खुशी के उछल पड़े। राजकुमारों ने भी धृतराष्ट्र से आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि वह इसकी अनुमति दे दें। किंतु धृतराष्ट्र न माने।

दुर्योधन ने विश्वास दिलाया कि पांडव जहाँ होंगे, वहाँ वे सब नहीं जाएँगे और बड़ी सावधानी से काम लेंगे। विवश होकर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी। एक बड़ी सेना को साथ लेकर कौरव द्वैतवन के लिए रवाना हुए। दुर्योधन और कर्ण फूले नहीं समाते थे। उन्होंने पहुँचने पर अपने डेरे ऐसे स्थान पर लगाए, जहाँ से पांडवों का आश्रम चार कोस की दूरी पर ही था।

गंधर्वराज चित्रसेन भी अपने परिवार के साथ उसी जलाशय के तट पर डेरा डाले हुए था। दुर्योधन के अनुचर जलाशय के पास गए और किनारे पर तंबू गाड़ने लगे। इस पर गंधर्वराज के नौकर बहुत बिगड़े और दुर्योधन के अनुचरों की उन्होंने खूब खबर ली। वे कुछ न कर सके और अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। दुर्योधन को जब इस बात का पता चला, तो उसके क्रोध की सीमा न रही। वह अपनी सेना लेकर तालाब की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचना था कि गंधर्वों और कौरवों की सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। घोर संग्राम छिड़ गया। यहाँ तक कि कर्ण जैसे महारथियों के भी रथ और अस्त्र चूर-चूर हो गए और वे उलटे पाँव भाग खड़े हुए। अकेला दुर्योधन लड़ाई के मैदान में अंत तक डटा रहा। गंधर्वराज चित्रसेन ने उसे पकड़ लिया। फिर रस्सी से बाँधकर उसको अपने रथ पर बैठा लिया और शंख बजाकर विजय-घोष किया। जब युधिष्ठिर ने सुना कि दुर्योधन व उसके साथी अपमानित हुए हैं, तो उसने गंभीर स्वर में कहा—"भाई भीमसेन! ये हमारे ही कुटुंबी हैं। तुम अभी जाओ और किसी तरह अपने बंधुओं को गंधर्वों के बंधन से छुड़ा लाओ।"

युधिष्ठिर के आग्रह पर भीम और अर्जुन ने कौरवों की बिखरी हुई सेना को इकट्ठा किया

और वे गंधर्वों पर टूट पड़े। अंतत: गंधर्वराज ने कौरवों को बंधनमुक्त कर दिया। इस प्रकार अपमानित कौरव हस्तिनापुर लौट गए।

पांडवों के वनवास के समय दुर्योधन की तो इच्छा राजसूय यज्ञ करने की थी, किंतु पंडितों ने कहा कि धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के रहते उसे राजसूय यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। तब ब्राह्मणों की सलाह मानकर दुर्योधन ने वैष्णव नामक यज्ञ करके ही संतोष कर लिया।

इसी समय की बात है कि महर्षि दुर्वासा अपने दस हज़ार शिष्यों को साथ लेकर दुर्योधन के राजभवन में पधारे। दुर्योधन के सत्कार से ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और कहा–"वत्स, कोई वर चाहो, तो माँग लो।"

दुर्योधन बोला–"मुनिवर! प्रार्थना यही है कि जैसे आपने शिष्यों-समेत अतिथि बनकर मुझे अनुगृहीत किया है, वैसे ही वन में मेरे भाई पांडवों के यहाँ जाकर उनका भी सत्कार स्वीकार करें और फिर एक छोटी सी बात मेरे लिए करने की कृपा करें। वह यह कि आप अपने शिष्यों समेत ठीक ऐसे समय युधिष्ठिर के आश्रम में जाएँ, जब द्रौपदी पांडवों एवं उनके परिवार को भोजन करा चुकी हों और जब सभी लोग आराम से बैठे विश्राम कर रहे हों।"

उन्होंने दुर्योधन की प्रार्थना तुरंत मान ली। दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ युधिष्ठिर के आश्रम में जा पहुँचे। युधिष्ठिर ने भाइयों समेत ऋषि की बड़ी आवभगत की और उनका सत्कार किया। कुछ देर बाद मुनि ने कहा–"अच्छा! हम सब अभी स्नान करके आते हैं। तब तक भोजन तैयार करके रखना।" कहकर दुर्वासा शिष्यों समेत नदी पर स्नान करने चले गए।

वनवास के प्रारंभ में युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें एक अक्षयपात्र प्रदान किया था और कहा था कि बारह बरस तक इसके द्वारा मैं तुम्हें भोजन दिया करूँगा। इसकी विशेषता यह है कि द्रौपदी हर रोज़ चाहे जितने लोगों को इस पात्र में से भोजन खिला सकेगी; परंतु सबके भोजन कर लेने पर जब द्रौपदी स्वयं भी भोजन कर चुकेगी, तब इस बरतन की यह शक्ति अगले दिन तक के लिए लुप्त हो जाएगी।

जिस समय दुर्वासा ऋषि आए, उस समय सभी को खिला-पिलाकर द्रौपदी भी भोजन कर चुकी थी। इसीलिए सूर्य का अक्षयपात्र उस दिन के लिए खाली हो चुका था।

द्रौपदी बड़ी चिंतित हो उठी और कोई सहारा न पाकर उसने परमात्मा की शरण ली। इतने में श्रीकृष्ण कहीं से आ गए और सीधे आश्रम के रसोईघर में जाकर द्रौपदी के सामने खड़े हो गए। बोले–"बहन कृष्णा, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने को दो।"

द्रौपदी और भी दुविधा में पड़ गई।

कृष्ण बोले–"ज़रा लाओ तो अपना अक्षयपात्र। देखें कि उसमें कुछ है भी या नहीं।"

द्रौपदी हड़बड़ाकर बरतन ले आई। उसके एक छोर पर अन्न का एक कण और साग की पत्ती लगी हुई थी। श्रीकृष्ण ने उसे लेकर मुँह में डालते हुए मन में कहा–"यह भोजन हो, इससे उनकी भूख मिट जाए।"

द्रौपदी तो यह देखकर सोचने लगी–"कैसी हूँ मैं कि मैंने ठीक से बरतन भी नहीं धोया! इसलिए उसमें लगा हुआ अन्न-कण और साग वासुदेव को खाना पड़ा। धिक्कार है मुझे!" इस

तरह द्रौपदी अपने-आपको ही धिक्कार रही थी कि इतने में श्रीकृष्ण ने बाहर जाकर भीमसेन को कहा-"भीम, जल्दी जाकर ऋषि दुर्वासा को शिष्यों समेत भोजन के लिए बुला लाओ।"

भीमसेन उस स्थान पर गया, जहाँ दुर्वासा ऋषि शिष्यों-समेत स्नान कर रहे थे। नज़दीक जाकर भीमसेन देखता क्या है कि दुर्वासा ऋषि का सारा शिष्य-समुदाय स्नान करके भोजन भी कर चुका है।

शिष्य दुर्वासा से कह रहे थे-"गुरुदेव! युधिष्ठिर से हम व्यर्थ में कह आए कि भोजन तैयार करके रखें। हमारा तो पेट भरा हुआ है। हमसे उठा भी नहीं जाता। इस समय तो हमारी ज़रा भी खाने की इच्छा नहीं है।"

यह सुनकर दुर्वासा ने भीमसेन से कहा-"हम सब तो भोजन कर चुके हैं। युधिष्ठिर से जाकर कहना कि असुविधा के लिए हमें क्षमा करें।" यह कहकर ऋषि अपने शिष्यों सहित वहाँ से रवाना हो गए।